फरवरी 1946 को अखिल भारतीय पत्र-सम्पादक के पांचवें सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए यह जोर देकर कहा था कि सम्पादक की सबसे बड़ी भूमिका अभिव्यक्ति की आजादी को बचाना है। पाठक-दर्शकों को आगे लाने की बात आजादी के पहले पंडित नेहरू ने अपने अनुभवों के आधार पर रखी थी। उनकी इस भावना की कद्र संविधान सभा की सलाहकार समिति ने भी किया था।

महात्मा गांधी ने आजादी प्राप्त करने से कई साल पहले ही कहा था कि समाचार-पत्र का पहला उद्देश्य है जनता की भावनाओं को अच्छी तरह से समझना और उसे प्रकाशित करना। दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य है जनता में अच्छे भावों को उभारना और तीसरा है गड़बड़ियों को बिना लाग-लपेट उजागर करना। आजादी की लड़ाई का सीधे नेतृत्व करने से संघर्ष के मैदान से अनुभव संगृहित करते हुए पत्र-पत्रिकाओं के लेखक-सम्पादक युग की बदलती ध्वनि को एक नयी दिशा दे रहे थे। यही कारण है कि भारतवासी उमंग और उम्मीद के साथ उन महान राष्ट्र-प्रेमियों के नेतृत्व को स्वीकार कर रहे थे तथा देश की मांग के अनुसार खासकर मेहनतकश एकजुट हो रहे थे। किसान-मजदूरों की एकजुटता देखने योग्य हो गयी थी। ऐसी स्थिति में भारत आजाद हुआ। संविधान सभा का गठन हुआ। उसकी सलाहकार समिति बनायी गयी। इस समिति की कई उपसमितियां थीं।

जे. बी. कृपलानी के नेतृत्व में प्रेस की आजादी से सम्बन्धित उपसमिति बनायी गयी। इस समिति में अम्बेडकर, के एम मुंशी, एन आर मसानी, के टी शाह, राजकुमारी अमृत कौर, श्रीमती हंसा मेहता, ए के अय्यर, हरनाम सिंह, मौलाना अबुल कलाम आजाद, जयराम दौलत राम तथा के एम पन्निकर

Scanned with CamScanner

शामिल थे। इस समिति ने प्रेस की आजादी से सम्बन्धित सभी अधिकारों का अध्ययन-विश्लेषण किया। दुनिया के सामने प्रेस की आजादी से शिक्षा लेते हुए इस समिति ने स्पष्ट तौर पर स्वीकार किया कि भारतवासियों को अभिव्यक्ति की आजादी देनी होगी। यहां तक कि इस समिति ने अमेरिकी मॉडल को रेखांकित करते हुए कहा था कि जनतंत्र के प्रचार-प्रसार के लिए प्रेस की आजादी को सुनिश्चित किया जाय।

■ पूरी गारंटी

इस समिति ने प्रेस की आजादी की पूरी गारंटी दी। साथ ही इस ओर भी ध्यान केन्द्रित किया कि प्रेस की आजादी के नाम पर समाज में बलवा न मचे। एक ओर जहां भारतवासियों को अभिव्यक्ति की आजादी मिली, वहीं दूसरी ओर कानून बनाकर राष्ट्र द्रोहात्मक, धर्मनिंदक, अश्लीलता, मानहानिकारक को दण्डनीय बनाने का प्रावधान निर्धारित किया गया। इस उपसमिति में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य पर आम सहमति बनाना कठिन था लेकिन अम्बेडकर के हस्तक्षेप से आम सहमति इस मुद्दे पर बन पायी। संविधान सभा में इस पर व्यापक बहस हुई। बहस के उपरान्त अनुच्छेद 19 (1) में प्रेस की आजादी को लिपिबद्ध करते हुए प्रत्येक नागरिक की वाक् एवं अभिव्यक्ति की आजादी को सुनिश्चित किया गया। संविधान लागू होने के एक साल के भीतर 'संविधान, प्रथम संशोधन, अधिनियम 1951' की धारा-3 द्वारा अनुच्छेद 19 (2) बनाया गया, जिसमें राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को रेखांकित किया गया। इस संशोधन के बाद अनुभव यह किया गया कि इसमें कुछ और जोड़ना उचित है। इसी को ध्यान में रखते हुए संविधान का सोलहवां संशोधन

Scanned with CamScanner

किया गया। इस संविधान संशोधन को संविधान सोलहवां संशोधन अधिनियम 1962 भी कहा जाता है, इसके अंतर्गत 'राष्ट्र की सम्प्रभुता और अखण्डता' जैसे शब्द जोड़े गये।

आजादी के बाद प्रेस इमरजेंसी पॉवर्स एक्ट 1931 का विवेचन किया गया। इसी विवेचन के दौरान प्रेस आब्जेक्शनेबल मैटर अधिनियम 1951 को पारित किया गया। 1956 में भारत सरकार ने छोटे अखबारों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया। इस प्रोत्साहन से छोटे अखबारों की प्रचार-संख्या में वृद्धि हुई। इस बारे में कानून बनाने पर जोर दिया गया था। इस अधिनियम का नाम था— समाचार पत्र, मूल्य और पृष्ठ अधिनियम 1956। इस अधिकार का प्रयोग करते हुए केन्द्र सरकार ने 'दैनिक समाचार-पत्र, मूल्य और पृष्ठ आदेश 1960' नाम से एक आदेश जारी किया। इस आदेश के विरुद्ध उस समय सुप्रीम कोर्ट ने राय दी थी। इसके बाद केन्द्र सरकार ने 1961 में एक और कानून बनाया, जिसका नाम दिया गया— 'दंड विधि संशोधन अधिनियम 1961' इसके बाद भारत सरकार ने 1962 में 'भारत प्रतिरक्षा अधिनियम 1962' बनाया। इस कानून के अंतर्गत देश की रक्षा, नागरिक सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, सैनिक कार्यवाही के कुशल संचालन को ध्यान में रखकर यह कानून बनाया गया था। संविधान विशेषज्ञों का कहना है कि चीनी आक्रमण को ध्यान में रखते हुए यह अधिनियम लागू किया गया। 1965 में 'प्रेस परिषद अधिनियम' बनाया गया। इसी कानून के अंतर्गत प्रेस परिषद का गठन किया गया। भारत में पहली बार पत्रकारिता के आंतरिक नियमन की प्रक्रिया की शुरुआत हुई। प्रेस परिषद को इसी कानून के जरिये यह अधिकार दिया गया कि समाचार-पत्रों के स्तर को बेहतर बनायें। कानून को कड़ाई से लागू किया जाय, इसे ध्यान में रखते

Scanned with CamScanner

हुए केन्द्र सरकार ने सिविल डिफेंस एक्ट, 1968 पारित किया। इस कानून के पारित होने के एक साल के भीतर भारतीय दंड संहिता की धारा 292 में संशोधन किया गया तथा अश्लील सामग्री के प्रकाशकों को दंडित करने का प्रावधान सुनिश्चित किया गया। इसके दो साल बाद में केन्द्र सरकार 'भारत प्रतिरक्षा अधिनियम 1971' नामक अधिनियम बनाया।

■ वाणी की गूंज

भारत-पाक युद्ध शुरू होते ही केन्द्र सरकार ने विध्वंसात्मक तथा राष्ट्र विरोधी प्रकाशनों पर नियंत्रण करने के लिए यह नियम बनाया। संविधान विशेषज्ञों ने इस कानून के सम्बन्ध में अलग-अलग राय दी। कानून बना लिया गया था, लेकिन यह लागू नहीं हो पाया। राष्ट्र विरोधी तथा विध्वंसात्मक सामग्रियों को किन अखबारों ने अपने यहां जगह दी? इसकी सूची बनाने के सम्बन्ध में तरह-तरह की राजनीतिक अभिव्यक्ति सामने आयी। इससे यह पता चलता है कि अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर जब कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत क्षमता का इस्तेमाल शुरू कर देता है तो जनता के सामने एक तरह से व्यापक समस्या उत्पन्न हो जाती है। आपातकाल से पहले और आजादी के बाद भारतीय समाचार-पत्र को अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए जोरदार संघर्ष करना पड़ा, हालांकि उस संघर्ष का तेवर अलग रहा। इसके बावजूद इस संघर्ष में वाक् की आजादी राष्ट्रीय एकता-अखण्डता-सम्प्रभुता को बचाने की वाणी अनुगूंजित होती रही।

■ आलोचनात्मक आधार

राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ते घटनाक्रमों को देखने से मीडिया की

Scanned with CamScanner

सामाजिक भूमिका पर चर्चा करना आवश्यक है। मीडिया किस तरह का दायित्व निभा रहा है, उसी से उसकी भूमिका का अंदाज लगाया जा सकता है। दायित्व निभाना कठिन होता है। जब किसी जिम्मेदारी को निभाने का प्रश्न आता है, तब निश्चित रूप से उसके दो पहलू सामने आते हैं-पहला, सकारात्मक और दूसरा नकारात्मक। यदि दायित्व के सकारात्मक पहलू कारगर साबित होते हैं, तो जन जीवन में अच्छा असर दिखता है। उस असर का विश्लेषण समाज को आगे बढ़ाने में एक तरह से मदद पहुंचाता है। उससे लोगों को सीखने में काफी सहूलियत मिलती है और सहूलियत मिलने के चलते एक खास वर्ग या एक खास कोने से उसे रोकने की कुचेष्टा भी जारी हो जाती है। उस कुचेष्टा को आलोचनात्मक आधार देने की तैयारी की जाती है, फिर भी दायित्व के सकारात्मक पहलू के समक्ष आत्मसमर्पण करती है। दूसरी ओर उसके नकारात्मक पहलुओं पर ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि पहले पहल दबी जुबान से उसकी तीखी आलोचना या निंदा की जाती है, लेकिन उसका प्रभाव उतना नहीं पड़ता है। क्षमतावान प्रभु जोर जबर्दस्ती दबाव डालते हैं। अपने पक्ष में वैश्विक जनमत तैयार करते हैं, लेकिन इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि लोग उनकी चाल न समझ सकें।

मीडिया से जुड़े लोगों पर भारी दायित्व है, पर क्या वे अपने दायित्व का निर्वाह कर पाते हैं? इन्हीं सवालों पर विचार करना लाजमी है। आखिर क्या कारण है कि मीडिया अपनी सामाजिक भूमिका का ठीक से पालन नहीं कर पाता। यदि वह अपनी भूमिका निभाता है तो उसे कहां तक सफलता मिलती है। सफलता और विफलता से बड़ी बात यह है कि मीडिया ईमानदारी, जिम्मेदारी और इंसानियत को कहां तक वहन करने में दिलचस्पी दिखलाता

Scanned with CamScanner

है और उससे भी अहम सवाल यह है कि उस पर किसका नियंत्रण है जिसके हाथ में नियंत्रण रहता है, वही उसे नचाता है और वह नाचने के लिए बाध्य होता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि सभी मामले वहीं रफादफा हो जाते हैं। मीडिया की भूमिका के संबंध में प्रभात पटनायक ने कहा है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (प्रिंट मीडिया) विपत्तियों को समरस करता है। ये विपत्तियां भले ही आकार और तीव्रता में भिन्न हों। परोक्ष रूप से प्राकृतिक आपदा और मानवकृत खून खराबे के बीच के अंतर को समाप्त करने लगती हैं। यही कारण है कि इलेक्ट्रानिक मीडिया का दर्शक श्रोता मानव कृत आपदाओं के हालात को भी उसी तरह महसूस करने लगता है जिस तरह वह प्राकृतिक विपत्तियों को महसूस करता है। वह नैतिक ताड़ना के संवेदी पक्ष को महसूस करने की क्षमता खो बैठता है, किन्तु यह स्पष्टीकरण पर्याप्त नहीं है, क्योंकि केवल मीडिया की क्षमता का ह्रास थोड़े ही हुआ है, ह्रास बौद्धिक समुदाय का भी हुआ है। आखिर मीडिया और बुद्धिजीवियों के असर का ह्रास क्यों होता है? उन दोनों समुदायों का प्रभाव जनता पर कारगर क्यों नहीं हो पाता है?

उन सवालों के कई जवाब हो सकते हैं। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से उन सवालों के जवाब तलाशने की कोशिशें की हैं। सबसे बड़ी बात है कि आम लोगों की नैतिकता में परिवर्तन हुआ है। पर ऐसा नहीं है कि लोगों के बीच नैतिकता के मसले पर बातचीत न होती हो या बहस न होती हो। जाहिर है कि सही और गलत पर लगातार बहस चलती रही है। सही को सही कहने वालों की संख्या काफी होती है। और गलत को गलत कहनेवालों की संख्या कम नहीं होती है। इसी से नैतिकता का सामंजस्य बनता है। नैतिकता का यह सामंजस्य भावी सही को सही कहने और गलत को गलत

Scanned with CamScanner

कहने की मेधा में बदलाव लाता है। फिर भी लोगों में कुछ संगति-विसंगति के बोध बचे रहते हैं। आज के दौर पर नजर डालने से पता चलता है कि वैश्विक हमले के कारण लोगों में सही गलत के बोध धीरे-धीरे गायब होने लगे हैं।

लोग अब सही गलत के चक्कर में कम पड़ना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में मीडिया की भूमिका का असली रवैया नजर में आता है। उसकी मनमानी भी झलकने लगती है जो सबसे अधिक तेज है, उसकी चलती और बढ़ जाती है। ऐसे तेज चैनल को अपने द्वारा निर्मित जोकरों से हार माननी पड़ती है। जिसे वह जोकर बनाकर पेश करता है, उसके सामने ही आत्मसमर्पण करना पड़ता है। उसे अपना पाला बदलना पड़ता है। सच तो है कि अपनी तेजस्विता का शिकार बन जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण है निजी क्षमता के बगैर समाज के निर्माण के सपने का मर जाना। इस तरह के ध्वंस की बात बहुत पहले ही सुनायी पड़ रही थी जब सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों में समाजवाद का पराभव हुआ तब यह बात स्पष्ट हुई और लोगों का मोहभंग हो गया। वैसे क्यूबा, चीन, उत्तर कोरिया जैसे कई ऐसे समाजवादी देश हैं, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। खास बात यह है कि लेनिनवादी समाजवाद के पराभव के बाद कोई जनतांत्रिक समाजवाद शक्तिशाली होकर नहीं उभरा। ऐसा क्यों हुआ? यह एक अहम् सवाल है।

■ सुधार और परिवर्तन

वामपंथी अर्थशास्त्रियों का मानना है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने परिवर्तन और सुधार की क्षमता को अपने शिकंजे में कस लिया, क्योंकि सामाजिक सुधार में राष्ट्र या शासन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाजवाद के

Scanned with CamScanner

पराभव के चलते लोगों के सही गलत के बोध हिल उठे हैं। यह भी कहा जाता है कि समाजवाद के पराभव से नैतिक संवेदनाओं को धक्का पहुंचा है तथा मेहनतकशों के हक और उनकी आजीविकाओं पर घातक हमले शुरू हुए हैं। फलतः परम्परागत अर्थ में 'भ्रष्टाचार' को मामूली समझा जाने लगा है। इसलिए उनके पास विचार करने का वक्त नहीं है।

वित्तीय पूंजी का जो तूफान उठा है, उसने भी मेहनतकशों को खामोश कर दिया है। यही कारण है कि निजीकरण की मुहिम तेज हुई है। मिट्टी के भाव सार्वजनिक कल कारखानों को बेचने की प्रक्रिया शुरू हुई है। निजीकरण और उदारीकरण के अग्निकुंड में गरीब किसानों और बेबस मजदूरों को झोंका जा रहा है जिनकी नौकरी चली जा रही है या जो नये सिरे से बेरोजगार हो रहे हैं, उन तमाम लोगों के प्रति हमारा मीडिया क्यों चुप है? उसकी चुप्पी कब टूटेगी? नये सिरे से हो रहे बेरोजगारों की स्थिति कैसी है? पिछले दस-पंद्रह सालों में विकासमान देशों में कितने मजदूर कर्मचारी बेरोजगार हुए हैं, मीडिया इस आंकड़े को क्यों नहीं प्रस्तुत करता है? क्या यह उसकी सामाजिक भूमिका की परिधि से बाहर की चीज है?

इन सबका मूल रहस्य है अर्थव्यवस्था को वैश्विक वित्तीय भंवरजाल में फंसने देना। महान महान अर्थशास्त्री भी इसकी सही व्याख्या करने से कतराते हैं। प्रोफेसर जगदीश भगवती को धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि उन्होंने कसीनो कैपिटलिज्म से सावधान रहने की सलाह दी है, वैसे उन्होंने भी उदारीकरण की वकालत की है। उदारीकरण अपने साथ-साथ सटोरियों की भीड़ जुटाता है। अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन ने उदारीकरण के संबंध में कहा

Scanned with CamScanner

है 'उदारीकरण' हमें कई अवसर प्रदान करता है और यह हम पर निर्भर करता है कि हम उन अवसरों का शिक्षा और स्वास्थ्य के विस्तार जैसे कार्यों के लिए भीतर ही भीतर दोहन कर लें।

■ बाजार में सांड़

प्रो. अमर्त्य सेन इस मत पर सवालिया निशान लगाते हुए प्रभात पटनायक ने लिखा है-...प्रो. अमर्त्य सेन यह भूल जाते हैं कि उदारीकरण निश्चित रूप से वैश्विक वित्तीय व्यवस्था के भंवर में फंसा देता है और इसके फलस्वरूप सरकार अपनी सक्रियता नहीं दिखा पाती है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि उदारीकरण के घोर असर प्रतिक्रमवर्ती पुनर्वितरण नीति से जुड़ते हैं, क्योंकि यह वह तंत्र है जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था का रुख सक्रिय होता है और यही वित्तीय पूंजी का सार तत्व है। और वित्तीय पूंजी को विश्व के बाजार में खुले सांड़ की तरह छोड़ दिया जाता है। उसके पक्ष में विभिन्न तरह की दलीलें पेश की जाती हैं।

यह प्रचारित किया जाता है कि प्रतिक्रमवर्ती नीतियां विकास की गति को तेज बनाती हैं। उस पूंजी का दबाव घरेलू अर्थ व्यवस्था पर पड़ता है। उससे एक खास किस्म की बौद्धिक चौंधराहट पैदा होती है। मीडिया उसी का शिकार बन जाता है।

इसीलिए मीडिया गरीबों-उत्पीड़ितों के संबंध में अधिक नहीं बोलता है तथा उनके पक्ष में खुलकर भी खड़ा नहीं होता है, लेकिन सच्चाई यह है कि मीडिया जनतांत्रिक और मानवीय मसलों का समर्थन करता है। यह आशाजनक

Scanned with CamScanner

स्थिति है। मीडिया ने एक और काम इधर किया है, वह है–राजनीतिज्ञों के प्रति संदेह पैदा करना। संदेह पैदा करना मीडिया ने अपना नैतिक कर्तव्य मान लिया है। जब–जब मीडिया ने पिछले 15–20 सालों में नैतिक मसलों को उठाया है, तब–तब उसे जनसमर्थन मिला है। मीडिया को चाहिए कि और मजबूती से जनहित के कार्यों पर अपना ध्यान लगाये, तभी जाकर वह अपनी सामाजिक भूमिका का पालन कर सकता है तथा वह अपनी इस स्थिति से बाहर निकल सकता है।

वैसे देखा जाय तो विगत बीस सालों से मीडिया का प्रसार भारत में सबसे अधिक हुआ है। इस वैश्विक दौर में मीडिया का प्रचार–प्रसार सहित उसका महत्व विकसित देशों की तरह विकासमान देशों में भी बढ़ा है। यह भी कहा जा सकता है कि विकसित देशों ने विकासमान देशों के बाजार पर अपना कब्जा जमाने के उद्देश्य से मीडिया का प्रचार इन विकासमान देशों में आरंभ किया है। इस संदर्भ में एक और अवधारणा है। वह अवधारणा काफी खौफनाक है, चाहे जितना खौफनाक हो, उसका वास्तविक आधार है। वैसे वास्तविकता को समझना कठिन होता है। वास्तविकता को समझने की लाख मजबूरियां भी होती हैं। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि अर्थनीति के स्वरूप में बदलाव आया है। आज बाजार की अपनी अर्थनीति है। इस अर्थनीति के चलते लोकतंत्र के सामने भी चुनौतियां उपस्थित हो रही हैं। भाषा उन चुनौतियों को स्वीकार कर आगे बढ़ रही है। इन चुनौतियों का कई स्तरों पर मुकाबला किया जा रहा है। खासकर राजनीतिक–आर्थिक स्तर पर उन चुनौतियों से दो–दो हाथ करने की कोशिश की जा रही है। इस कोशिश में कामयाबी चाहे जिसको मिले, मजबूत होना है, तो लोकतंत्र को।

Scanned with CamScanner

■ लहू भरो

भारत में लोकतंत्र मजबूत होने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। यदि कोई यह कहेगा कि भारत का लोकतंत्र दुनिया के अन्य देशों की अपेक्षा ताकतवर है, तो यह बात गले के नीचे नहीं उतरती है बल्कि गले में हड्डी की तरह फंस जाती है। आज भारत में लोकतंत्र लहूलुहान है। पर इससे दुःखी होने का कोई कारण नहीं दिखता है। बनने की प्रक्रिया में लहू बहता ही है। बिना लहू से धरती सींची भी नहीं जा सकती है। जहां वाक् की आजादी पर अंकुश हो, जहां कार्टून बनाने तथा कार्टून को फारवर्ड करने को अपराध की संज्ञा दी जाती हो, प्रश्नकर्ता को गिरफ्तार किया जाता हो, जहां विकास के मद पर खर्च करने के पैसों को निगलते देखा जा रहा हो, जहां हाथ में सबसे पवित्र राष्ट्रीय ध्वज हो और भ्रष्टाचार के कीचड़ में पांव हो, जहां पैसों से जन प्रतिनिधियों को खरीदने-बेचने के लिए मंडी बनायी गयी हो, जहां जेल में रहने वाले अपराधियों को भारी मतों से विजयी होते देखा जाता हो, जहां सरेआम मंत्रियों-महामंत्रियों, मंत्रियों के मंत्री, संतरियों के संतरी को बेआबरू होते देखा जाता हो— ऐसी स्थिति में कौन कहेगा कि लोकतंत्र बिल्कुल ठीक है।

■ मुहिम जारी

मीडिया इस लोकतंत्र को मजबूत करने की काफी कोशिश कर रहा है। इस कोशिश के दौरान मीडिया पर कालिख पोतने की भी मुहिम जारी है। कहा जाता है कि मीडिया के कारण ही सब कुछ बर्बाद हो रहा है; जबकि सच्चाई कुछ और है। नीति निर्धारकों ने हमेशा लोकतंत्र को कमजोर करने का खेल किया है। इसके चलते उनकी कलई खुली है और उनको नुकसान पहुंचा है।

Scanned with CamScanner

उस नुकसान की भरपाई करने के लिए उन्होंने एक नया जाल बुना है। उस जाल को काटने के लिए लोगों ने कोशिश की है। एक हद तक जाल कटा है। मानव-सभ्यता ने हर समय इस तरह के लाखों-लाख षड्यंत्रों का सामना किया है और सफलता हासिल की है। षड्यंत्रों के विरुद्ध जनमत तैयार हुआ है। इस जनमत को बनाने के पीछे हिन्दी का सबसे बड़ा हाथ रहा है। इस सम्बन्ध में चाहे जो कोई कुछ कहे, पर इतना सच है कि लोगों ने लोकतंत्र को मजबूत करने का संघर्ष भारत की धरती पर तेज किया है। लोगों की भागीदारी बढ़ी है।

लोकतंत्र के प्रति लोगों में उत्साह बढ़ा है। साथ ही उनकी जागरुकता बढ़ी है। इस उत्साह और जागरुकता के पीछे मीडिया का हाथ सबसे अधिक है। यह एक अलग सवाल है कि मीडिया का और सावधानी के साथ आगे बढ़ना उचित है। मीडिया से लोगों की अपेक्षाएं बढ़ी हैं। समय की मांगों के अनुसार मीडिया खुद को नहीं बदल पाता है। जब-जब पूंजी और श्रम के बीच किसी एक विकल्प को खोजने की बारी आती है, तो मीडिया को पूंजी का दामन पकड़ते देखा जाता है। जिस व्यक्ति के सिर में तेल है, उसी के सिर में मीडिया तेल देता है। वर्चस्ववादियों का वफादार मीडिया कब तक बना रहता है, यह देखने की बात है। कभी-काल प्रभुत्वशालियों के विरुद्ध मीडिया को खड़े होते देखा जाता है, कभी-कभी बोलते देखा जाता है। चरित्रगत गुणों के चलते मीडिया सबके विरुद्ध बोलता है।

■ सिद्धांत और स्वभाव

मीडिया के सिद्धांतकारों का यह विश्वास है कि विरोध करने से शायद विकल्प

Scanned with CamScanner

का जन्म हो। विरोध कभी-कभी विकल्प पैदा करता है। लेकिन आज तक कोई ऐसा सिद्धांत सामने नहीं आया है, जिसके आधार पर कोई कहे कि विरोध विकल्प को पैदा करता है। कभी-कभी विरोध ऐसी जगह पहुंच जाता है, जहां यदि कुछ है भी, तो वह बर्बाद हो जाता है। अंध विरोध खतरनाक होता है, जो ईर्ष्या से चालित होता है और उसका स्वभाव एक हद तक हिटलरी स्वभाव से मिलता है। यह हिटलरी स्वभाव लोकतंत्र और मीडिया के विरुद्ध खड़ा होता है। इस स्वभाव को समाज से दूर करना नितांत जरूरी है। यह काम भाषा के जरिये होता है। हिन्दी ने हिन्दी पट्टी को हिटलरी स्वभाव से एक हद तक दूर करने में कामयाबी हासिल की है। लेकिन इस कामयाबी को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय राजनीतिक परिदृश्य से पूरी तरह तानाशाही रवैय्ये का अंत हो गया है। अभी भी उसके अवशेषों को पूरी तरह से हटाना संभव नहीं हो सका है। वैसे हिन्दी इस काम में जुटी हुई है। कितना वक्त लगेगा कहना मुश्किल है। संघर्ष को नतीजे तक पहुंचने में समय लगता है। धैर्य के बिना यह पूरा भी नहीं होता है। संघर्ष के मैदान में जीत हासिल करने का अभी तक ए प्लस बी का होल स्क्वायर नामक सूत्र का जन्म नहीं हुआ है। सिद्धांतकारों ने अभी तक इस बारे में सिर्फ इतनी सूचना दी है कि लोकतंत्र की मजबूती आम जनता की भागीदारी पर निर्भर करती है। आम जनता भाषा के बिना यह नहीं समझ पाती है कि लोकतंत्र को मजबूत करना क्यों जरूरी है?

दुनिया में प्राय: एक सौ से अधिक ऐसे देश हैं, जहां लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं चल रही हैं। अभी तक उन देशों में उसके विकल्प के रूप में कोई दूसरी व्यवस्था नहीं चल पायी है। हर देश से तानाशाही प्रवृत्तियों के विरुद्ध जनमत के पुख्ता बनने की खबर आती है। मानवीय संवेदना के लिए यह

Scanned with CamScanner

खबर अच्छी है। वैसे हर खबर की जात एक है। कोई खबर न अच्छी होती है और न कोई खबर बुरी होती है। जिस खबर में तथ्यों की भरमार होती है, वह खबर भी जनता के विरुद्ध जाती है और जिस खबर में सिर्फ व्याख्या होती है, वह भी एकांगी होती है। सूचनाओं से भरी खबरों में भी रस उत्पन्न करने की क्षमता नहीं देखी जाती है और कभी-कभी सूचना रहित खबर भी रस को उत्पन्न करने में सफल साबित होती है। इस रस का मामला मनोरंजन से बिल्कुल भिन्न है। मनोरंजनात्मक खबरों के जरिये भी समाज में आह्लादणी शक्तियों को जगाने का प्रयास किया जाता है। उन शक्तियों को यदि मानव विकास और सामाजिक उत्थान में नहीं लगाया जा सकता है तो मानव सभ्यता को भारी खतरा होता है। यह प्रयास किया जा रहा है कि इस दुनिया में सूचना ही सब कुछ है।

■ युग का सच

यह युग सूचना क्रांति का युग है। लेकिन इस सूचना क्रांति ने मानव सभ्यता को क्या दिया? क्या मानव-सभ्यता को वास्तविक आधार मिल गया? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वास्तविक आधार मिलने में अभी समय लगेगा, जो भाषा के जरिये ही संभव है। इसके लिए हिन्दी प्रयासरत है। यदि सूचना में दम नहीं है, तो भाषा उसे मजबूत करने का प्रयास करती है। व्याख्या करने की क्षमता भाषा में होती है। सूचना को चाहे जितनी बड़ी क्रांति का जामा पहना दिया गया हो, समाज उसे तब तक आत्मसात नहीं करता, जब तक कि उससे पूरे समाज की भलाई नहीं होती है। इस संदर्भ में नवम्बर क्रांति को याद करना अनुचित नहीं होगा क्योंकि इस क्रांति ने पूरी तरह समाज को एक नयी दिशा दी तथा बदतर शासन की दिशा को बदल दिया, इसके बावजूद समाज ने इसे

Scanned with CamScanner

एक युगांतकारी घटना के रूप में देखने का प्रयास किया, जबकि राजनीतिक ईर्ष्या के चलते दो-चार भ्रष्ट नेताओं के क्रियाकलापों को उजागर करने तथा मुनाफा लूटने के उद्देश्य से दो-चार सूचनाओं का कारोबार बढ़ा लेने से सूचना क्रांति का युग आ गया।

इससे निश्चित-तौर पर मुनाफाखोरों का हौसला बुलंद हुआ, पर जिसने कभी मुनाफे का सौदा नहीं किया, जो इस दुनिया को गढ़ने के लिए सदा अपना लहू देता रहा, उसे क्या मिला? क्या इस तरह के हजारों-हजार प्रश्न हमारे बीच नहीं हैं? क्या इन प्रश्नों ने समाज के प्रबुद्ध समुदायों को आईना नहीं दिखाया है। इससे यही साबित होता है कि प्रबुद्ध समुदायों की जीभ लम्बी हो गयी है और उनकी रीढ़ की हड्डी छोटी हो गयी है। कहने से कुछ नहीं होता है। इसके मूल्यांकन का भी कोई महत्व नहीं है। यह हिन्दी की गरिमा है, जो आज छाती ठोककर सवाल करती है कि आपने क्या किया। कथनी नहीं; बल्कि करनी का मूल्यांकन लाजिमी है। इसी मूल्यांकन से लोकतंत्र मजबूत होता है और मीडिया का प्रसार होता है।

हिन्दी के असंख्य योद्धा कभी एकजुट होकर तो कभी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार संघर्ष में जुटे हुए हैं। उनके संघर्ष को बड़े पैमाने पर देखने का प्रयास किया जाता है। उनका संघर्ष विकल्प दे रहा है। उस विकल्प के अनुसार यह कहा जा सकता है कि यह संघर्ष निश्चित तौर पर उन तमाम नीतियों की दिशा को बदल देगा, जिन नीतियों के चलते समाज के 80-90 प्रतिशत हिस्सों का विकास नहीं हो पाया है। समाज के पांच-दस प्रतिशत लोगों को समृद्धवान बनाने से लोकतंत्र का प्रसार जिस तरह नहीं हो सकता है, ठीक उसी तरह मीडिया का भी प्रचार-प्रसार नहीं हो सकता है। भारत में

Scanned with CamScanner

सबसे अधिक बोलने और समझने की भाषा हिन्दी है। इस हिन्दी के जरिये अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं को भी समझने में सुविधाएं मिलती हैं। इन्हीं सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए जनसंघर्ष को मजबूत करने का कारगर हस्तक्षेप हिन्दी कर रही है।

■ संभावनाओं की तलाश

लोकतंत्र के समक्ष जितनी तरह की समस्याएं हैं, उन सभी समस्याओं का निराकरण चाहे हिन्दी भाषियों को एकजुट करने से उपलब्ध न हो, पर इतना निश्चित है कि समस्याओं की प्रवृत्तियों को समझना सहज हो जाता है। इसी सहजता के जरिये संभावना की तलाश की जा सकती है। इसके लिए मीडिया के सदुपयोग पर सबसे अधिक ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। हिन्दी इस आवश्यकता को जिस तरह महसूस कर रही है, ठीक उसी तरह उसके अनुसार अपने को ढाल रही है। हिन्दी अपनी इस भूमिका की वजह से अन्तरराष्ट्रीय जगत में अपनी पहचान बना रही है। जहां आज पूरी दुनिया में अस्थिरता की राजनीति खुद के लाभ-लोभ की परिधि से बाहर नहीं निकल पा रही है, वहीं हिन्दी अपनी पहचान के जरिये लोकतंत्र को मजबूत करने में मीडिया पर भी नकेल लगाये हुए है।

आज की स्थिति ऐसी हो गयी है कि मीडिया चाहकर भी हिन्दी से बाहर नहीं निकल पाता है। हिन्दी के पास दर्शकों और पाठकों की संख्या सबसे ज्यादा है। कम लागत में अच्छी-अच्छी पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी में निकालना-छापना बेचना सहज है। इस सिलसिले में याद यह भी रखना चाहिए कि हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका नीति-निर्धारण में उस तरह की नहीं

Scanned with CamScanner

है, जिस तरह की भूमिका अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाएं निभा पा रही हैं। इसके चाहे जो कारण हों, लेकिन सच यह है कि अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के पास विज्ञापन ज्यादा है। उसके पास लहकदार चहकदार विज्ञापन ही नहीं है, बल्कि मटकदार विज्ञापन भी हैं, इसलिए अभी भी अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में नीति-निर्धारण की क्षमता बरकरार है। वैसे इन अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के मालिक अच्छी तरह समझ रहे हैं कि हिन्दी के बिना उनका यह निजाम अधिक दिनों तक टिकनेवाला नहीं है। इसलिए उन मालिकों में आज हिन्दी की झोपड़ी में झांकने की सुगबुगाहट शुरू हुई है।

हिन्दी के पास इतने श्रमजीवी हैं, जिन्होंने सदा अपने खून-पसीने से इस दुनिया को सींचा है, जिनके आंसू आज भी नहीं सूखे हैं। हिन्दी ने उन आंसुओं को पोंछने के लिए लोकतंत्र के लिए संग्राम छेड़ा है। आजादी के पहले हिन्दी का संग्राम साम्राज्यवाद-सामंतवाद विरोधी स्वरों के साथ इतिहास में अंकित है और आजादी के बाद हिन्दी ने इस संघर्ष को और आगे बढ़ाया है। आने वाले दिनों में यह संघर्ष और बढ़ेगा क्योंकि मीडिया के नये चेहरे को भी हिन्दी की जरूरत महसूस हो रही है। इसलिए हिन्दी ने अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए नया जनसंघर्ष शुरू किया। इस संघर्ष के लिए बाजारू अर्थनीति का जिस तरह विकल्प बनाना जरूरी है, ठीक उसी तरह जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना लाजिमी है। साथ ही अधिकारों का हनन करने वालों की पहचान होगी।

■ संकल्प की वेदना

दिन के उजाले में लोकतंत्र और मीडिया का विकास करते हुए हिन्दी ने दोस्त-

Scanned with CamScanner

दुश्मन से विस्तृत जन-समुदाय को परिचित कराने का जो संकल्प लिया है, उस संकल्प को पूरा करने में पूरा समाज हिस्सा लेने के लिए भीतर ही भीतर तैयार हो रहा है। इस तैयारी में हिन्दी भाषा और साहित्य द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह हो रहा है। इस पृष्ठभूमि को तैयार करने में हिन्दी दिन-ब-दिन खुद को परिमार्जित कर रही है तथा देश-दुनिया में अपनी कीर्ति स्थापित कर रही है। गुणात्मक और संख्यात्मक दोनों तरीके से हिन्दी का संघर्ष इतिहास में एक वाणी के तौर पर धीरे-धीरे अपना स्थान सुरक्षित कर रहा है; जिसकी गूंज युग-युग तक व्याप्त रहेगी। इस अनुगूंज की महिमा अपने प्रथम पर्याय में चाहे जितनी वेदनादायक-दु:खदायक हो पर इसका दूसरा पर्याय आशापूर्ण और संभावना-सम्पन्न होगा।

ऐसी उम्मीद करना व्यर्थ नहीं होगा, क्योंकि जन संघर्ष नाकाम नहीं होता है, चाहे यह लोकतंत्र को सुदृढ़ करने के लिए किया जाय या मीडिया की सामाजिक भूमिका को स्पष्ट करने के लिए किया जाय। इन दोनों कार्यों में भाषा की महती भूमिका होती है। हिन्दी ने विगत दिनों में लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए जनसंघर्ष, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, अधिकार को स्थापित करने के लिए संघर्ष किया है। जिस तरह हिन्दी ने लोकतंत्र के समक्ष समस्त चुनौतियों का मुकाबला किया है, ठीक उसी तरह मीडिया को जनता के हित में लागू करने की पूरी कोशिश की है। इस कोशिश को चाहे कोई किसी नजर से देखे, इतना जरूर स्पष्ट है कि हिन्दी का विकास भी लोकतंत्र की भाषा के रूप में हो रहा है। मीडिया की जुबान भी हिन्दी है। यदि मीडिया इस जुबान में नहीं बोलता है तो उसकी जीभ स्लिप करने लगती है।

Scanned with CamScanner

■ अपनी धरती, अपना आकाश

भारत की धरती पर जिस भाषा में लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत
सहज दिखता है, वह हिन्दी भाषा ही है। यही भाषा सबको साथ लेकर
है तथा मीडिया के प्रचार-प्रसार में भी इसकी सहजता सर्वविदित है।
इसका मतलब यह कतई नहीं है कि यह सबसे ऊपर है और कोई भाषा है
नहीं। सबको साथ लेकर आगे बढ़ने की जिम्मेदारी हिन्दी को निभानी
तभी जाकर लोकतंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिन्दी का विकास
हो सकता है। हिन्दी की यह प्रवृत्ति हर काल में दिखती रही है। इसलिए
देकर यह कहा जा सकता है कि लोकतंत्र और मीडिया के विकास में हि
ने अपनी भूमिका जिस तरह अतीत में अदा की है, ठीक उसी तरह भवि
में अदा करेगी।

लोकतंत्र को मजबूत करने तथा मीडिया को प्रसारित करने में हि
सार्थक भूमिका का निर्वाह करेगी; इसलिए कि वास्तविकता की उलझनों
समझने की सामर्थ्य हिन्दी में है। इसी सामर्थ्य में संभावनाएं छिपी हुई
जिसकी तलाश लोकतंत्र की मजबूती की गारंटी है तथा मीडिया की सामाजि
भूमिका की बानगी है। इसी गारंटी और बानगी की अभिव्यक्ति हिन्दी है
लोकतंत्र और मीडिया के विकास में वाक्-आजादी की राह पर सम्प्रभुता
शंखनाद करते हुए अपनी जय-यात्रा के लिए अग्रसर है जिसमें भारत की
धरती शामिल है।

Scanned with CamScanner